भूमिका

आज हम जो भी हैं, हमारे पर्यावरण की देन है। वैसे हम 'पर्यावरण' शब्द से परिचित हैं। इस शब्द का प्रयोग टेलीविजन, समाचार-पत्रों तथा हमारे आस-पास के लोगों द्वारा लंबे अरसे से किया जाता रहा है। हमारे बुजुर्ग हमसे कहते हैं कि हमारा पर्यावरण/वातावरण अब वैसा नहीं रहा, जैसा पहले था। लोगों द्वारा हमेशा इस बात पर जोर दिया जाता रहा है कि हमारी भारतीय संस्कृति सदियों से पर्यावरण को महत्त्व देती रही है, यहाँ की नदियाँ भी माँ के समान आदर पाती रही हैं। समुद्र, वायु व सूर्य आदि को देवों की कोटि में रखा गया है। बरगद, तुलसी, नीम तथा पीपल आदि वृक्ष धर्म-ग्रंथों में किसी न किसी रूप में पूज्य रहे हैं।

भारत के पास अपार प्राकृतिक संपदा उपलब्ध है। प्रकृति ने संपूर्ण विश्व को विशाल प्राकृतिक संसाधन उपलब्ध कराया है। इन संसाधनों का प्रयोग विवेकपूर्वक किया जाए तो अनेक सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं से निपटा जा सकता है किंतु लोग भौतिक विकास की इस दौड़ में पर्यावरण का संरक्षण करने के बजाए, विनाश करते जा रहे हैं। प्रकृति का विनाश ही सुनामी, बाढ़, सूखा, अनियमित वर्षा-चक्र तथा संक्रामक रोगों के रूप में हमें निगलने लगा है। अनेक पर्यावरणविद् और सामाजिक कार्यकर्ता जैसे- अरुंधती राय, सुंदरलाल बहुगुणा, मेधा पाटेकर, संदीप पांडे, सुनीता नारायण आदि के संघर्षों के बावजूद प्रकृति का दोहन जारी है। विकास के नाम पर प्रकृति के इस विनाश को बाजार ने बढ़ावा दिया है इस बात को विद्वानों ने भी स्वीकार किया है।

प्रश्न यह उठता है कि क्या पर्यावरण के बिना हमारा विकास संभव है? लोगों को विकास चाहिए या पर्यावरण? इन प्रश्नों का उत्तर हम जानना चाहते हैं, लेकिन इसका उपयुक्त जवाब दे पाना आसान नहीं है या यूँ कहें कि सैद्धांतिकी स्तर पर प्रश्नों का उत्तर आसानी से दिया जा सकता है जबकि व्यावहारिक रूप से उत्तर देना बहुत कठिन है।

महिलाएँ पर्यावरण के प्रति सचेत हैं। चाहे धार्मिक प्रतिबंध हों, परंपराएँ हों उनके माध्यम से ही वे जल, जंगल और जमीन के अंगों और भंडारों की पूजा-अर्चना करती रही हैं लेकिन भौतिक चकाचौध,बढ़ती जनसंख्या, शहरीकरण, लालच की प्रवृत्ति ने पुरातन नियमों को तोड़-मरोड़कर पर्यावरण को काफी नुकसान पहुँचाया है। अब समय आ गया है कि समेकित रूप से इनमें पर्यावरण के प्रति चेतना जागृति की जाए। गाँव की स्वच्छता, जल-माल का प्रबंधन, वृक्षारोपण, वनों का संरक्षण आदि बातें तभी संभव होंगी जब गाँव की प्रत्येक व्यक्ति के साथ-साथ महिलाएँ भी अपनी भागीदारी सुनिश्चित करें। प्रस्तुत शोध विषय में 'ग्रामीण वर्धा क्षेत्र की महिलाओं में पर्यावरण जागरूकता की स्थिति' का अध्ययन किया गया है।

यह सर्वविदित है कि किसी भी शोध-कार्य को करने के लिए एक निश्चित समय-सीमा एवं निश्चित भौगोलिक-क्षेत्र का होना अनिवार्य है। इससे शोध-कार्य की विश्वसनीयता और उपयोगिता बनी रहती है। प्रस्तुत लघु शोध प्रबंध 'ग्रामीण वर्धा क्षेत्र की महिलाओं में पर्यावरण जागरूकता' विषय पर विस्तार से अध्ययन करने के लिए इस शोध-प्रबंध को कुल आठ अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रथम-अध्याय में पर्यावरण की अवधारणा, पर्यावरण के प्रकार, पर्यावरण-प्रदूषण, पर्यावरण-संरक्षण एवं जागरूकता, ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं की कार्य-पद्धति, शोध का उद्देश्य और अध्ययन की सीमाओं को केंद्र में रखकर सविस्तार चर्चा की गई है।

अध्याय-2 में साहित्य का पुनरावलोकन तथा अध्याय-3 में शोध-प्रविधि की व्याख्या प्रस्तुत की गई है। अध्याय-4 के अंतर्गत 'गणेशपुर गाँव' में रहने वाले लोगों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति तथा अध्याय-पाँच के अंतर्गत 'ग्रामीण वर्धा क्षेत्र की

महिलाओं में पर्यावरण जागरूकता' से संबंधित व्याख्या प्रस्तुत की गई है। अध्याय-5 के अंतर्गत 'पर्यावरण संरक्षण में महिलाओं की भागीदारी और अध्याय-7 में पर्यावरण संरक्षण संबंधित नीतियों और कार्यक्रमों की व्याख्या और अध्याय-8 के रूप में निष्कर्ष और सुझाव दिए गये हैं । अंत में संदर्भ-ग्रंथ सूची, साक्षात्कार-अनुसूची और कुछ शोधपरक छायाचित्रों को संलग्न किया गया है।

प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध-लेखन के क्रम में वस्तुनिष्ठता एवं तथ्यात्मक शुद्धता बनाए रखने का प्रयास शोधार्थी द्वारा सदैव किया गया है, फिर भी शोधार्थी द्वारा किसी प्रकार की गल्तियाँ(वर्तनी-दोष और अशुद्धता) पाई जाती है तो उसे शोधार्थी की संज्ञानरहित भूल समझा जाए। अंत में इन तमाम सीमाओं के साथ बिना किसी पूर्णता का दावा करते हुए यह लघु शोध-प्रबंध आपके समक्ष प्रस्तुत करती हूँ।